शिक्षा संवाद
2025, 12(1-2): 55-63
ISSN: 2348-5558
https://doi.org/10.5281/zenodo.19590629

शोध आलेख

Feminisation of Indian Classical Dance and the Manifestation of Masculinity: A Sociological Analysis of Gender Relations

भारतीय शास्त्रीय नृत्य का स्त्रीकरण एवं पुरुषत्व का प्रदर्शन: जेंडर संबंधों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

*Gokhlesh Kumar

* Department of Education, University of Delhi, New Delhi, India

Abstract

In contemporary Indian society, Indian classical dance is often perceived as a female-dominated art form. The preponderance of women in dance institutions, cultural platforms, and academic training structures has socially associated this art form with femininity. This research paper examines the process of the feminisation of Indian classical dance through a sociological lens. The central argument of this article is that this feminisation is neither a natural cultural evolution nor merely the result of women's increasing participation; rather, it is deeply intertwined with historical restructuring, the gendered distribution of cultural capital, gender performativity, and the structures of hegemonic masculinity. Drawing upon the theoretical frameworks of Judith Butler, Pierre Bourdieu, and R.W. Connell, this article demonstrates that the dance stage serves as an active site for the construction, reproduction, and demarcation of gender identity. Furthermore, this article analyses how the diminishing participation of men—occurring parallel to the process of feminisation—is intertwined with social scepticism, identity crises, and issues of cultural legitimacy. In conclusion, this study concludes that Indian classical dance offers a significant analytical terrain for the study of gender relations, wherein empowerment and control—as well as visibility and constraint—coexist.

Keywords: Feminisation, Indian Classical Dance, Gender Relations, Masculinity, Cultural Capital, Gender Performativity, Hegemonic Masculinity, Power Structure.

सारांश

भारतीय शास्त्रीय नृत्य को समकालीन भारतीय समाज में प्रायः एक स्त्री-प्रधान कला के रूप में देखा जाता है। नृत्य संस्थानों,सांस्कृतिक मंचों और अकादमिक प्रशिक्षण संरचनाओं में महिलाओं की बहुलत्ता ने इस कला को सामाजिक रूप से स्त्रीत्व से संबद्ध कर दिया है। इस शोध पत्र में समाजशास्त्रीय विश्लेषण के माध्यम से भारतीय शास्त्रीय नृत्य के स्त्रीकरण की प्रक्रिया को समझा गया है। शोध पत्र का केंद्रीय तर्क यह है की यह स्त्रीकरण न तो स्वाभाविक सांस्कृतिक विकास है और न ही केवल महिलाओं की बढ़ती भागीदारी का परिणाम, बल्कि यह ऐतिहासिक पुनर्गठन, सांस्कृतिक पूँजी के लिंग-आधारित वितरण, जेंडर प्रदर्शनात्मकता और वर्चस्वशाली पुरुषत्व कि संरचनाओं से गहराई से जुड़ा हुआ है। जूडिथ बटलर, पियरे बोर्दीयो और आर.डब्ल्यू.कोनेल के सैद्धांतिक ढाँचों के माध्यम से यह अध्ययन दर्शाता है कि नृत्य का मंच लिंग पहचान के निर्माण,पुनरुत्पादन और सीमांकन का सक्रिय स्थल है। साथ ही यह विश्लेषण करता है कि स्त्रीकरण की प्रक्रिया के समानांतर पुरूषों कि घटती भागीदारी सामाजिक संदेह,पहचान संकट और सांस्कृतिक वैधता से किस प्रकार जुड़ी हुई है। अंत में, यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भारतीय शास्त्रीय नृत्य लिंग संबंधों के अध्ययन के लिए एक महवपूर्ण विश्लेषणात्मक क्षेत्र प्रदान करता है, जहाँ सशक्तिकरण और नियंत्रण, दृश्यता और सीमाबद्धता,दोनों एक साथ मौजूद रहते हैं।

कूटशब्द: स्त्रीकरण,भारतीय शास्त्रीय नृत्य,जेंडर संबंध, पुरुषत्व,सांस्कृतिक पूँजी,जेंडर परफॉर्मेटिविटी, हेजेमोनिक पुरुषत्व,शक्ति संरचना।

भूमिका

भारतीय शास्त्रीय नृत्य को प्रायः एक पवित्र, सांस्कृतिक और सौंदर्यपरक कला के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसे भारतीय परंपरा, अध्यात्म और सांस्कृतिक निरंतरता का प्रतीक माना जाता है। किंतु समाजशास्त्रीय विक्ष्लेषण यह इंगित करता है कि कोई भी सांस्कृतिक कला-रूप केवल सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं होता, बल्कि वह सामाजिक संरचनाओं, शक्ति-संबंधों और जेंडर मान्यताओं के निर्माण तथा पुनुरूत्पादन का माध्यम भी होता है (भरुचा,1995)। कला के माध्यम से समाज अपने आदर्शों को न केवल परस्तुत करता है,बल्कि उन्हें वैधता और स्थायित्व भी प्रदान करता है।

वर्तमान समय में भारतीय शास्त्रीय नृत्य का स्त्री-प्रधान स्वरूप एक समान्यीकृत सामाजिक तथ्य के रूप में स्थापित हो चुका है। मंचों, अकादमियों और सांस्कृतिक आयोजनों में महिलाओं की बहुलता इस धारणा को मजबूत करती है कि यह "महिलाओं की कला" है। सुब्रमण्यम(1995) ने इस प्रवृत्ति को 'लिंग आधिपत्य' के रूप में व्याख्यायित किया है,जहाँ किसी सांस्कृतिक क्षेत्र में एक लिंग का प्रभुत्व केवल संख्या का परिणाम नहीं,बल्कि सामाजिक अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया से उत्पन्न होता है। यहाँ जूडिथ बटलर(1990) कि 'लिंग प्रदर्शनात्मकता' कि अवधारणा विशेष रूप से प्रासांगिक है। बटलर के अनुसार,जेंडर कोई स्थायी या जैविक सत्य नहीं,बल्कि सामाजिक क्रियाओं और दोहरावों के माध्यम से निर्मित होता है। यदि इस दृष्टि से भारतीय शास्त्रीय नृत्य को देखा जाए,तो मंच पर स्त्रीत्व विशिष्ट गुणों,जैसे-कोमलता,भक्ति,शालीनता और भावनात्मकता का बार-बार प्रदर्शन उसे 'स्वाभाविक स्त्री कला' के रूप में स्थापित कर देता है। इस प्रकार नृत्य केवल जेंडर का प्रतिबिंब नहीं है,बल्कि जेंडर कि सामाजिक निर्मिति का सक्रिय स्थल भी है। साथ ही पियरे बोर्दीयो(1986) के 'सांस्कृतिक पूँजी' और 'हैबिटस' की अवधारणाएँ इस प्रक्रिया को और स्पष्ट करती हैं। शास्त्रीय नृत्य आज मध्यमवर्गीय सांस्कृतिक पूँजी का एक महवपूर्ण प्रतीक बन चुका है। परिवार अपनी बेटियों को नृत्य सिखाकर सांस्कृतिक प्रतिष्ठा अर्जित करते हैं। यह निवेश केवल कौशल का विकास नहीं,बल्कि सामाजिक स्थिति के निर्माण का माध्यम भी है। इस प्रकार नृत्य स्त्री-संस्कार और सांस्कृतिक गरिमा का प्रतीक बनता है, जबकि लड़कों के लिए सांस्कृतिक पूँजी के अन्य रूपों, जैसे- खेल,तकनीकी शिक्षा या प्रतिस्पर्धी परीक्षाओं को प्राथमिकता दी जाती है। अतः भारतीय शास्त्रीय नृत्य का स्त्रीकरण एक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और संरचनात्मक प्रक्रिया है, जो जेंडर संबंधों, शक्ति-संतुलन और सांस्कृतिक पूँजी के वितरण से गहराई से जुड़ी हुई है। यह लेख इसी जटिल अंतर्संबंध का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

शास्त्रीय नृत्य और लिंग संबंधों की सामाजिक समझ

लिंग संबंधों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उन्हें केवल जैविक भिन्नता के रूप में न देखें, बल्कि सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक अभ्यास के रूप में विक्ष्लेषण करें। सिंह (2015) के अनुसार, भारतीय समाज में पुरुषत्व और स्त्रीत्व के स्पष्ट सामाजिक परिभाषाएँ मौजूद हैं। पुरुषत्व को शक्ति, नियंत्रण और सार्वजनिक क्षेत्र से जोड़ा जाता है, जबकि स्त्रीत्व को कोमलता, भावनात्मकता और

सांस्कृतिक संरक्षण से संबद्ध किया जाता है। यह द्वैत सांस्कृतिक गतिविधियों में भी परिलक्षित होता है। बटलर(1990) के सिद्धांत के अनुसार, जेंडर का निर्माण निरंतर किए गए प्रदर्शन के माध्यम से होता है। भारतीय शास्त्रीय नृत्य में जब स्त्री पात्रों, शृंगार-प्रधान कथाओं और भावनात्मक अभिव्यक्तियों का पुनरावृत्त प्रदर्शन होता है,तो स्त्रीत्व की एक विशिष्ट छवि निर्मित होती है। यह छवि दर्शकों और कलाकारों दोनों के लिए स्वाभाविक प्रतीत होने लगती है। इसी प्रकार, पुरुष नर्तकों से अपेक्षा की जाती है कि वे शक्ति और संतुलन का प्रदर्शन करें, जिससे जेंडर भूमिकाएँ मंच पर पुन: स्थापित होती हैं । इस प्रकार नृत्य जेंडर की सामाजिक पुनर्रचना का एक सक्रिय माध्यम बन जाता है। आचार्या(2014) ने 'जेंडरयुक्त शरीर' की अवधारणा के माध्यम से दिखाया है कि नृत्य प्रशिक्षण शरीर को विशिष्ट जेंडर मानदंडों के अनुरूप ढालता है। यह प्रक्रिया बोर्दीयो(1977) के 'हैबिटस' की अवधारणा से भी जुड़ती है। हैबिटस, वह अंतर्निहित सामाजिक ढाँचा है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी क्रियाओं और अभिव्यक्तियों को स्वाभाविक मानता है। जब लड़कियाँ बचपन से नृत्य प्रशिक्षण प्राप्त करती हैं और लड़के अन्य गतिविधियों की ओर प्रेरित होते हैं,तो यह जेंडरयुक्त हैबिटस का निर्माण करता है। परिणामस्वरूप, नृत्य स्त्रीत्व का 'स्वाभाविक विस्तार' प्रतीत होने लगता है। बोर्दीयो(1986) के सांस्कृतिक पूँजी सिद्धांत के अनुसार, सांस्कृतिक कौशल और कलात्मक दक्षता सामाजिक प्रतिष्ठा अर्जित करने का साधन बन सकते हैं। भारतीय मध्यमवर्गीय परिवारों में शास्त्रीय नृत्य सीखना विशेष रूप से लड़कियों के लिए सांस्कृतिक पूँजी का प्रतीक बन जाता है। कुसुमा(2015) ने यह पाया कि नृत्य कक्षाओं में महिलाओं कि बहुलता स्वयं एक सामाजिक संकेत बन जाती हैं, जिससे पुरुष छात्र अलगाव अनुभव करते है और उनकी भागीदारी कम होती जाती है। इस प्रकार सांस्कृतिक पूँजी का जेंडर-आधारित वितरण जेंडर संबंधों को और अधिक असमान बनाता है।

अतः शास्त्रीय नृत्य और जेंडर संबंधों की सामाजिक समझ यह स्पष्ट करती है की यह क्षेत्र केवल कलात्मक अभिव्यक्ति का मंच नहीं,बल्कि जेंडर के सामाजिक निर्माण, सांस्कृतिक पूँजी के वितरण और शक्ति संरचना के पुरुत्पादन का महत्वपूर्ण स्थल है। बटलर और बोर्दीयो के सैद्धांतिक ढाँचों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि स्त्रीकरण एक संरचनात्मक और प्रदर्शनात्मक प्रक्रिया है,जो सामाजिक मानदंडों को स्थिर भी करती है और उन्हें चुनौती देने कि संभावनाएँ भी उत्पन्न करती है।

शास्त्रीय नृत्य के स्त्रीकरण के मूल कारण:

भारतीय शास्त्रीय नृत्य का स्त्रीकरण किसी एक कारण का परिणाम नहीं है,बल्कि यह ऐतिहासिक पुनर्गठन, सांस्कृतिक अर्थ-निर्माण, संस्थागत संरचनाओं और जेंडर मानदंडों की संयुक्त प्रक्रिया से निर्मित हुआ है। इसे समझने के लिए आवश्यक है की हम उन वैचारिक और सामाजिक आधारों का विश्लेषण करें जिनके माध्यम से नृत्य को स्त्रीत्व से जोड़ा गया।

- **कोमलता,भाव और स्त्रीत्व का संबंध:** भारतीय शास्त्रीय नृत्य की प्रमुख विशेषताओं में भाव,भक्ति, शृंगार, करुणा और विरह जैसे तत्व शामिल हैं। इन तत्वों को भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में प्रायः

CC BY NC ND

स्त्रीत्व से जोड़ा गया है। आचार्या(2014) और देसाई(2018) यह दर्शाती हैं कि नृत्य प्रशिक्षण में भाव-प्रधानता और कोमल अभिव्यक्ति को केंद्रीय महत्व दिया जाता है, जिससे यह धारणा निर्मित होती है कि यह कला स्त्रियों के लिए अधिक 'उपयुक्त' है। बटलर(1990) के लिंग प्रदर्शनात्मकता सिद्धांत के अनुसार,जब किसी विशेष जेंडर से जुड़े गुणों का बार-बार प्रदर्शन होता है,तो वे स्वाभाविक प्रतीत होने लगते हैं। नृत्य में स्त्री पात्रों, शृंगार-प्रधान कथानकों और भावनात्मक अभिव्यक्तियों की पुनरावृत्ति स्त्रीत्व को नृत्य का केंद्रीय तत्व बना देती है। इस प्रकार नृत्य का स्त्रीकरण केवल सांस्कृतिक धारणा नहीं, बल्कि प्रदर्शनात्मक पुनरुत्पादन का परिणाम है। इसके विपरीत, कोनेल(2005) की 'वर्चस्वशाली पुरुषत्व' कि अवधारणा बताती है कि समाज में आदर्श पुरुषत्व शक्ति,नियंत्रण और प्रभुत्व से जुड़ा होता है। जब नृत्य को कोमल और भावनात्मक गतिविधि के रूप में देखा जाता है, तो वह इस वर्चस्वशाली पुरुषत्व कि छवि से मेल नहीं खाता। परिणामस्वरूप, नृत्य और पुरुषत्व के बीच दूरी निर्मित होती है,जो स्त्रीकरण कि प्रक्रिया को और सुदृढ़ करती है।

- **औपनिवेशिक काल,राष्ट्रवाद और मध्यवर्गीय नैतिकता:** भारतीय शास्त्रीय नृत्य का वर्तमान स्वरूप औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक काल में पुनर्गठित हुआ। श्रीनिवासन (2012) ने यह दिखाया है कि राष्ट्रवादी परियोजना के अंतर्गत नृत्य को "शुद्ध" और "सभ्य" कला के रूप में पुनर्परिभाषित किया गया। इस प्रक्रिया में देवदासी परंपरा से जुड़े तत्वों को हटाकर नृत्य को मध्यमवर्गीय नैतिकता के अनुरूप ढाला गया। आनंद(2019) के अनुरूप, इस पुनर्गठन के दौरान महिलाओं को सांस्कृतिक परंपरा की वाहक के रूप में प्रस्तुत किया गया। नृत्य को घरेलू-सांकृतिक गरिमा और स्त्री-संस्कार का प्रतीक बनाया गया। इससे मध्यमवर्गीय परिवारों में लड़कियों को नृत्य सिखाना सामाजिक प्रतिष्ठा का साधन बन गया। बोर्दीयो (1986) के सांस्कृतिक पूँजी सिद्धांत के आधार पर कहा जा सकता है कि शास्त्रीय नृत्य स्त्रियों के लिए सांस्कृतिक पूँजी का एक वैध रूप बन गया । परिवार अपनी बेटियों में इस पूँजी का निवेश करते हैं, जिससे उन्हें सामाजिक सम्मान और सांस्कृतिक वैधता प्राप्त होती है। इसके विपरीत,लड़कों के लिए अन्य प्रकार कि पूँजी,जैसे- शैक्षिक या आर्थिक पूँजी को प्राथमिकता दी जाती है। इस प्रकार सांस्कृतिक पुनर्गठन और जेंडर-आधारित पूँजी वितरण ने स्त्रीकरण को संस्थागत आधार प्रदान किया।
- **प्रशिक्षण स्थल,संस्थागत संरचनाएँ और जेंडर हैबिटस:** नृत्य विद्यालय, अकादमियाँ और सांस्कृतिक मंच जेंडर संबंधों के निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। कुसुमा, बालकृष्णन और अलूर(2015) के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नृत्य कक्षाओं में महिला छात्राओं की बहुलता स्वयं एक सामाजिक संकेत बन जाती है। पुरुष छात्रों कि अल्पसंख्यक स्थिति उन्हें अलगाव कि अनुभूति कराती है,जिससे उनकी निरंतरता प्रभावित होती है। यह स्थिति बोर्दीयो (1977) के 'हैबिटस' कि अवधारणा से समझी जा सकती है। हैबिटस वह सामाजिक ढाँचा है जिसके भीतर व्यक्ति कि पसंद, रूचि और व्यवहार निर्मित होते हैं। जब बचपन से लड़कियों को नृत्य और लड़कों को खेल या तकनीकी गतिविधियों की ओर निर्देशित किया जाता है,तो एक जेंडरयुक्त हैबिटस का निर्माण होता है। परिणामस्वरूप,नृत्य स्त्रियों के लिए 'स्वाभाविक'और पुरूषों के लिए 'अपवाद' प्रतीत होता है। गांगुली(2016) यह भी इंगित करती हैं कि पुरस्कार,मंचीय अवसर और संस्थागत मान्यता अक्सर

CC BY NC ND

स्त्री-प्रधान प्रस्तुतियों को बढ़ावा देते हैं। इससे नृत्य कि स्त्री-छवि और मजबूत होती है। इस प्रकार संस्थागत संरचनाएँ केवल भागीदारी का प्रतिबिंब नहीं होती,बल्कि वे जेंडर संबंधों को सक्रिय रूप से आकार देती हैं।

स्त्रीकरण और पुरूषों का शास्त्रीय नृत्य से दूर होना

भारतीय शास्त्रीय नृत्य के स्त्रीकरण की प्रक्रिया केवल महिलाओं के बढ़ती भागीदारी तक सीमित नहीं है,बल्कि इसके साथ-साथ पुरूषों कि घटती उपस्थिति भी एक महत्वपूर्ण सामाजिक तथ्य के रूप में सामने आती है। यह कमी व्यक्तिगत रुचि के अभाव का परिणाम नहीं है,बल्कि सामाजिक अपेक्षाओं,जेंडर रूढ़ियों और शक्ति-संबंधों से जुड़ी हुई है। सुब्रमण्यम(1995) ने इसे लिंग आधिपत्य कि प्रक्रिया से जोड़ा है,जहाँ किसी सांस्कृतिक क्षेत्र में एक जेंडर कि प्रधानता धीरे-धीरे दूसरे जेंडर को हाशिए पर ले जाती है।

- **पुरुषत्व का प्रदर्शन और सामाजिक दवाब** : भारतीय समाज में पुरुषत्व का प्रदर्शन एक महत्वपूर्ण सामाजिक दायित्व के रूप में देखा जाता है। कोनेल (2005) की 'वर्चस्वशाली पुरुषत्व' की अवधारणा बताती है कि समाज में एक वर्चस्वशाली पुरुषत्व का आदर्श मौजूद रहता है,जो शक्ति,नियंत्रण ,प्रतिस्पर्धा और सार्वजनिक प्रभुत्व से जोड़ा होता है। जब शास्त्रीय नृत्य को भावनात्मक, कोमल और सौंदर्य-प्रधान गतिविधि के रूप में देखा जाता है,तो यह आदर्श पुरुषत्व से असंगत प्रतीत होता है। शर्मा(2019) के अनुसार, शास्त्रीय नृत्य करने वाले पुरूषों को अक्सर सामाजिक संदेह और उपहास का सामना करना पड़ता है। उनके पुरुषत्व पर प्रश्न उठाए जाते हैं,जिससे वे अतिरिक्त सामाजिक दवाब का अनुभव करते हैं। बटलर(1990) के लिंग प्रदर्शनात्मकता सिद्धांत के अनुसार,यदि कोई व्यक्ति प्रचलित जेंडर मानदंडों से अलग व्यवहार करता है,तो उसे सामाजिक रूप से नियंत्रित या अनुशासित किया जाता है। इस दृष्टि से पुरुष नर्तकों को अपने पुरुषत्व को पुनः स्थापित करने के लिए विशेष प्रकार कि शारीरिक भाषा,शक्ति-प्रधान मुद्राओं या मंचीय आक्रामकता का प्रदर्शन करना पड़ सकता है। यह दवाब विशेष रूप से किशोरावस्था और युवावस्था में अधिक प्रभावी होता है,जब जेंडर पहचान सामाजिक रूप से अधिक संवेदनशील होती है। परिणामस्वरूप, कई युवा पुरुष नृत्य को छोड़ देते हैं या इसे पेशेवर रूप में अपनाने से हिचकते हैं।
- **दोहरी अपेक्षाएँ और पहचान संकट:** पुरुष नर्तकों के सामने दोहरी अपेक्षाएँ उपस्थित होती हैं। एक ओर उनसे समाज कि पारंपरिक पुरुषत्व की परिभाषा पर खरे उतरने की अपेक्षा की जाती है,और दूसरी ओर नृत्य के भीतर उन्हें ऐसे भाव,मुद्राएँ और कथानक प्रस्तुत करने होते हैं जिन्हें समाज स्त्री-सुलभ मानता है। यह द्वंद्व उनकी जेंडर पहचान को जटिल बना देता है। बोर्दीयो(1977) के 'हैबिटस' की अवधारण के अनुसार, व्यक्ति कि पहचान और व्यवहार सामाजिक संरचनाओं से गहराई से प्रभावित होते हैं। यदि किसी पुरुष का सामाजिक हैबिटस उसे शक्ति और कठोरता की ओर निर्देशित करता है,तो नृत्य जैसी गतिविधि उसके लिए आंतरिक संघर्ष का कारण बन सकती है। यह संघर्ष पहचान संघर्ष के रूप में प्रकट होता है, जहाँ व्यक्ति स्वयं को सामाजिक अपेक्षाओं और व्यक्तिगत

CC BY NC ND

रुचि के बीच विभाजित अनुभव करता है। सुब्रमण्यम(1995) का तर्क है कि जब किसी कला पर एक जेंडर का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है, तो दूसरे जेंडर की भागीदारी अपवाद के रूप में देखी जाती है। यह अपवादात्मक स्थिति पुरुष नर्तकों को "सामान्य" से अलग और विशिष्ट बनाती है, जिससे उनका सामाजिक अनुभव और अधिक जटिल हो जाता है।

- **भरतनाट्यम; स्त्रीकरण का प्रतिनिधि दृष्टांत:** भरतनाट्यम को अक्सर भारतीय शास्त्रीय नृत्य के स्त्रीकरण का प्रतिनिधि उदाहरण माना जाता है। सुब्रमण्यम(2012) और गुप्ता(2017) के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक काल में भरतनाट्यम को मध्यमवर्गीय स्त्रियों की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में पुनर्परीभाषित किया गया। मंचीय अवसर, शिक्षण भूमिकाएँ और साँस्कृतिक प्रतिनिधित्व में महिलाओं की प्रधानता ने इसे स्त्री-प्रधान शैली के रूप में स्थापित कर दिया। कोनेल(2005) के दृष्टिकोण से देखा जाए तो पुरुष भरतनाट्यम नर्तक या तो वैकल्पिक पुरुषत्व का प्रतिनिधित्व करते हैं या उन्हे अपने प्रदर्शन में शक्ति-प्रधान तत्वों को अधिक स्पष्ट करना पड़ता है। कई बार उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे स्त्री-प्रधान शैली को ही अपनाएँ, जिससे उनके पुरुषत्व की स्वतंत्र अभिव्यक्ति सीमित हो जाती है। इस प्रकार भरतनाट्यम यह दर्शाता है कि स्त्रीकरण केवल सांख्यिकीय परिवर्तन नहीं है, बल्कि यह साँस्कृतिक पुनर्परिभाषा की प्रक्रिया है, जिसमे जेंडर भूमिकाएँ पुनर्गठित और कभी-कभी कठोर भी हो जाती हैं।

स्त्रीकरण, जेंडर संबंध और शक्ति संरचना

श्रीनिवासन(2012) यह स्पष्ट करती हैं कि नृत्य का इतिहास और उसकी प्रस्तुति स्वयं जेंडर से प्रभावित रही है। महिलाओं को संस्कृति की वाहक के रूप में प्रस्तुत किया गया, जबकि पुरुषों को अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों,जैसे- राजनीति, प्रशासन और आर्थिक गतिविधियों से जोड़ा गया। इस प्रकार साँस्कृतिक क्षेत्र का एक भाग स्त्रियों के लिए 'उपयुक्त' और अन्य क्षेत्र पुरुषों के लिए 'स्वाभाविक' माने जाने लगे। भारतीय शास्त्रीय नृत्य इसी सामाजिक विभाजन के भीतर अपनी वर्तमान संरचना ग्रहण करता है। भारूचा(1995) के अनुसार, नृत्य और रंगमंच समाज की शक्ति संरचना से अलग नहीं हैं। जेंडर आधारित असमानता को "परंपरा" और "संस्कृति" के नाम पर वैधता मिल जाती है। जब किसी कला को स्त्रियों से जोड़ दिया जाता है, तब यह केवल भागीदारी का प्रश्न नहीं रहता, बल्कि शक्ति- संतुलन का भी प्रश्न बन जाता है। स्त्रीकरण का अर्थ यहाँ केवल महिलाओं की उपस्थिति में वृद्धि नहीं है, बल्कि उस साँस्कृतिक अर्थ-निर्माण से है जिसके माध्यम से नृत्य को स्त्रीत्व का प्रतिनिधि क्षेत्र घोषित किया जाता है। यदि हम इस प्रक्रिया को शक्ति-संबंधों की दृष्टि से देखें तो स्पष्ट होता है कि जेंडर संबंधों का निर्माण केवल व्यक्तिगत पसंद या प्रतिभा पर आधारित नहीं होता, बल्कि सामाजिक संरचनाओं के भीतर संचालित होता है, समाज ये तय करता है कि कौन-सा कार्य किस जेंडर के लिए अधिक 'स्वाभाविक' या 'सम्मानजनक' है। परिणामस्वरूप, शास्त्रीय नृत्य में स्त्रियों की बढ़ती उपस्थिति को साँस्कृतिक स्वीकृति मिलती है, जबकि पुरुषों की उपस्थिति को अक्सर प्रश्नांकित किया जाता है। इस संदर्भ में बोर्दीयो के साँस्कृतिक पूँजी के सिद्धांत को लागू करना उपयोगी होगा। शास्त्रीय नृत्य आज मध्यमवर्गीय साँस्कृतिक पूँजी का एक महत्वपूर्ण प्रतीक बन चुका है। परिवार अपनी बेटियों को नृत्य सिखाकर साँस्कृतिक प्रतिष्ठा

और सामाजिक सम्मान अर्जित करना चाहते हैं। यह प्रक्रिया जेंडर आधारित साँस्कृतिक पूँजी के निर्माण को दर्शाती है, जहाँ नृत्य स्त्री- संस्कार का प्रतीक बन जाता है। इसके विपरीत, लड़कों के लिए वही पूँजी अन्य क्षेत्रों,जैसे- प्रतियोगी परीक्षाएँ, खेल या तकनीकी शिक्षा में निवेश की जाती है। इस प्रकार साँस्कृतिक संसाधनों का वितरण भी जेंडर के आधार पर संरचित होता है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि स्त्रीकरण का अर्थ शक्ति का पूर्ण हस्तांतरण नहीं है। यद्यपि मंच पर महिलाओं की दृश्यता बढ़ी है, फिर भी संस्थागत नियंत्रण,जैसे- निर्णायक मंडल, साँस्कृतिक नीतियाँ, अकादमिक ढाँचे अक्सर पुरुष- प्रधान बने रहते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि दृश्य उपस्थिति और वास्तविक शक्ति समानार्थी नहीं हैं। स्त्रीकरण एक प्रतीकात्मक प्रभुत्व स्थापित कर सकता है, किंतु संरचनात्मक शक्ति- संतुलन यथावत रह सकता है। अंततः, स्त्रीकरण और शक्ति संरचना के बीच संबंध रैखिक नहीं बल्कि जटिल है। यह प्रक्रिया जेंडर संबंधों को पुनर्गठित भी करती है और उन्हे स्थिर भी करती है। एक ओर यह महिलाओं को साँस्कृतिक क्षेत्र में केंद्रीय स्थान देती हैं, तो दूसरी ओर जेंडर भूमिकाओं को सीमित ढाँचों में पुनर्स्थापित भी करती है। इस प्रकार भारतीय शास्त्रीय नृत्य जेंडर और शक्ति के अंतर्संबंधों को समझने का एक महत्वपूर्ण विश्लेषणात्मक स्थल बन जाता है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि भारतीय शास्त्रीय नृत्य का स्त्रीकरण केवल भागीदारी का सांख्यिकीय परिवर्तन नहीं है, बल्कि यह जेंडर संबंधों के पुनर्गठन की एक जटिल सामाजिक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया ऐतिहासिक पुनर्निर्माण, साँस्कृतिक अर्थ-निर्माण और शक्ति संरचनाओं के अंतर्संबंध से निर्मित हुई है। स्त्रीकरण को यदि केवल महिलाओं की बढ़ती उपस्थिति के रूप में देखा जाए तो यह अधूरा विश्लेषण होगा। वास्तव में यह उस व्यापक सामाजिक तंत्र का परिणाम है जिसमे कला, शरीर और जेंडर पहचानें एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि जेंडर का निर्माण नृत्य के मंच पर निरंतर प्रदर्शन के माध्यम से होता है। नृत्य में स्त्रीत्व के विशिष्ट गुण जैसे कोमलता, भावनात्मकता, शालीनता और भक्ति को बार-बार दोहराया जाता है, जिससे वे "स्वाभाविक" प्रतीत होने लगते हैं। इसी प्रकार पुरुषत्व को शक्ति, नियंत्रण और कठोरता से जोड़ा जाता है। यह द्वैत जेंडर भूमिकाओं को स्थिर करता है और नृत्य को एक विशेष जेंडर से सम्बद्ध कर देता है। इस अर्थ में नृत्य केवल साँस्कृतिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि जेंडर मानदंडों के पुनरुत्पादन का स्थल भी है। चर्चा का एक महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि स्त्रीकरण और शक्ति का संबंध सीधा नहीं है। प्रथम दृश्या ऐसा प्रतीत होता है कि शास्त्रीय नृत्य में महिलाओं की केन्द्रीयता उन्हे साँस्कृतिक सशक्तिकरण प्रदान करती है। मंच पर दृश्यता, अकादमिक मान्यता और सामाजिक प्रतिष्ठा निश्चित रूप से महिलाओं के लिए अवसरों का विस्तार करती हैं। किंतु, गहन विश्लेषण यह दिखाता है कि यह सशक्तिकरण नियंत्रित और संरचित है। महिलाओं से एक विशिष्ट प्रकार के स्त्रीत्व के प्रदर्शन की अपेक्षा की जाती है। अत: स्त्रीकरण आंशिक सशक्तिकरण के साथ-साथ साँस्कृतिक अनुशासन कि प्रक्रिया भी है। दूसरी और, पुरुषों की घटती भागीदारी को केवल व्यक्तिगत चयन या रुचि के रूप में नहीं समझा जा सकता। सामाजिक संदेह, पुरुषत्व की पारंपरिक परिभाषाएँ और लैंगिक रूढ़ियाँ पुरुष नर्तकों पर अतिरिक्त दबाव डालती हैं। उन्हे अपने पुरुषत्व को लगातार प्रमाणित करना पड़ता है। इस प्रकार नृत्य का स्त्रीकरण पुरुषत्व की सीमाओं को और अधिक कठोर बनाता है। यह स्थिति लिंग आधिपत्य की अवधारणा को पुष्ट करती है, जहाँ एक क्षेत्र धीरे-धीरे

cc BY NC ND

एक जेंडर के प्रभुत्व से चिन्हित हो जाता है इस चर्चा से यह भी उभर कर आता है कि स्त्रीकरण को न तो पूर्णत: सकारात्मक और न ही पूर्णत: नकारात्मक प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। यह एक द्वंद्वात्मक स्थिति है, जिसमे सशक्तिकरण और नियंत्रण, दृश्यता और सीमाबद्धता, दोनों साथ-साथ मौजूद रहते हैं। भारतीय शास्त्रीय नृत्य इस द्वंद्व को अत्यंत स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करता है। अंतत: यह कहा जा सकता है कि भारतीय शास्त्रीय नृत्य जेंडर संबंधों के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण विश्लेषात्मक स्थल प्रदान करता है। यहाँ जेंडर केवल सामाजिक पहचान नहीं बल्कि एक साँस्कृतिक अभ्यास के रूप में निर्मित और पुनर्निर्मित होता है। इसलिए भविष्य के अध्ययन को विशेष रूप से पुरुष नर्तकों के अनुभवों, संस्थागत नीतियों और प्रशिक्षण प्रक्रियाओं के जेंडर आयामों पर अधिक गहन ध्यान देने कि आवश्यकता है।

निष्कर्ष:

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय शास्त्रीय नृत्य का स्त्रीकरण एक बहुस्तरीय सामाजिक प्रक्रिया है, जिसे केवल सांख्यिकीय असंतुलन या साँस्कृतिक संयोग के रूप में नहीं समझा जा सकता। चर्चा में स्थापित किया गया कि नृत्य का मंच जेंडर पहचान के निरंतर निर्माण और पुनरुत्पादन का सक्रिय स्थल है। इसी आधार पर यह निष्कर्ष पुन: रेखांकित करता है कि स्त्रीकरण दरअसल सामाजिक अर्थ-निर्माण, शक्ति-संतुलन और साँस्कृतिक वैधता की अंत:क्रियात्मक प्रक्रिया का परिणाम है। बटलर(1990) के लिंग प्रदर्शनात्मकता सिद्धांत के आलोक में यह स्पष्ट होता है कि नृत्य में स्त्रीत्व के विशिष्ट गुणों का पुनरावृत्त प्रदर्शन उन्हे स्वाभाविक और अपरिवर्तनीय प्रतीत कराता है। इस प्रकार मंच केवल कलात्मक प्रस्तुति का स्थान नहीं, बल्कि सामाजिक मानदंडों की पुनः स्थापना का माध्यम भी बन जाता है। स्त्रीकरण इस पुनरावृत्ति का संरचनात्मक परिणाम है जहाँ स्त्रीत्व नृत्य का ‘‘स्वाभाविक’’ गुण मान लिया जाता है और पुरुष भागीदारी अपवाद के रूप में देखी जाती है। कोनेल(2005) कि वर्चस्वशाली पुरुषत्व कि अवधारणा चर्चा में उभरकर आए उस तर्क को और स्पष्ट करती है कि पुरूषों की घटती भागीदारी व्यक्तिगत चयन नहीं,बल्कि वर्चस्वशाली पुरुषत्व की सामाजिक अपेक्षाओं से जुड़ी है। जब नृत्य को कोमल,भावनात्मक और सौंदर्य-प्रधान गतिविधि के रूप में चिन्हित किया जाता है,तो वह प्रभुत्वशाली पुरुषत्व की छवि से टकराता है। परिणामस्वरूप, पुरुष नर्तकों को या तो वैकल्पिक पुरुषत्व विकसित करना पड़ता है या सामाजिक दबाव के कारण इस क्षेत्र से दूरी बनानी पड़ती है। इस प्रकार स्त्रीकरण और पुरूषों का दूर होना एक ही संरचनात्मक प्रक्रिया के दो परस्पर जुड़े आयाम बन जाते हैं। इसी प्रकार बोर्दीयो(1986) की सांस्कृतिक पूँजी और हैबिटस कि अवधारणाएँ यह स्पष्ट करती है कि नृत्य का स्त्रीकरण सामाजिक निवेश और सांस्कृतिक संसाधनों के जेंडर-आधारित वितरण से भी जुड़ा हुआ है। मध्यमवर्गीय परिवारों द्वारा नृत्य को बेटियों कि सांकृतिक पूँजी के रूप में स्वीकार करना इस प्रक्रिया को वैधता और स्थायित्व प्रदान करता है। इस प्रकार दृश्य उपस्थिति और संरचनात्मक शक्ति के बीच का अंतर भी उजागर होता है, स्त्रियों की मंचीय केन्द्रीयता अनिवार्यतः संस्थागत शक्ति समान भागीदारी का संकेत नहीं देती।

इस अध्ययन का समेकित निष्कर्ष यह है कि भारतीय शास्त्रीय नृत्य का स्त्रीकरण एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया है। यह महिलाओं को सांस्कृतिक दृश्यता और वैधता प्रदान करता है, पर साथ ही जेंडर

CC BY NC ND

भूमिकाओं को विशिष्ट सीमाओं में भी परिभाषित करता है। यहाँ सशक्तिकरण और नियंत्रण ,दोनों एक साथ कार्य करते हैं। इस द्वंद्व को समझे बिना न तो स्त्रीकरण की प्रक्रिया को पुर्णतः सकारात्मक माना जा सकता है और न ही पुर्णतः दमनकारी। अंततः, भारतीय शास्त्रीय नृत्य जेंडर संबंधों के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण विक्श्लेषणात्मक क्षेत्र प्रस्तुत करता है, जहाँ कला,शरीर,शक्ति और पहचान एक-दूसरे से गहराई से अंतर्संबद्ध हैं। भविष्य के शोध को विशेष रूप से पुरुष नर्तकों के अनुभवों, प्रशिक्षण संरचनाओं कि जेंडर राजनीति और सांस्कृतिक पूँजी के वितरण पर केंद्रित होना चाहिए । इससे यह समझने में सहायता मिलेगी कि क्या शास्त्रीय नृत्य जेंडर संतुलन की दिशा में परिवर्तनकारी भूमिका निभा सकता है, या वह मौजूदा जेंडर संरचनाओं को ही पुनःस्थापित करता रहेगा।

*****

Refrences/ संदर्भ

Acharya, A. (2014). Embodied selves: Gendered experiences in Indian classical dance. Journal of Cultural Studies, 12(2), 145-158.

Anand, S. (2019). Tradition and transformation: Gender, modernity and Indian classical dance. Indian Journal of Performing Arts, 6(1), 23-28

Bharucha, R. (1995). Theatre and the world: Performance and the politics of culture. Routledge.

Bourdieu, P. (1986). The forms of capital. In J. Richardson (Ed.), Handbook of theory and research for the sociology of education (pp.241-258). Greenwood.

Bourdieu, P. (1997). Outline of a theory of practice. Cambridge University Press.

Butler, J. (1990). Gender Trouble: Feminism and the subversion of identity. Routledge.

Connell, R. W. (2005). Masculinities (2nd ed.). University of California Press.

Desai, D. (2018). Dance, gender and cultural identity in India. South Asian Popular Culture, 16(3), 217-230.

Gangulay, S. (2016). Institutional frameworks and gendered performance practices in Indian classical dance. Journal of Gender Studies, 25(4), 389-402.

Kusuma, R., Balakrishnan, L., & Aloor, S. (2015). Dance and gender relations: A study of male and female interactions in Indian classical dance classes. International Journal of Sociology and Anthropology, 7(3), 52-60.

Sharma, S. (2019). Masculinity, performance and cultural suspicion: Male dancers in Indian classical traditions. Journal of Men's Studies, 27(2), 189-204.

Singh, R. (2015). Gender roles, work and cultural expectations in contemporary India. Indian Journal of Social Research, 56(1), 67-82.

Srinivasan, A. (2012). Performing histories: Gender, nationalism and the construction of Indian classical dance. Cultural Dynamics, 24(2-3), 169-187.

Subramaniam, V. (1995). Gender monopolies in Indian classical dance: A sociological analysis of cause and context. Sangeet Natak Akademi.